अमृत काल
अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ समीक्षित एवं स्वीकृत शोध पत्रिका
ISSN: 3048-5118, खंड 2, अंक 2, अप्रैल - जून 2024

भारतीय समाज और जाति: एक विश्लेषण

डॉ. प्रवेश कुमार

सहायक प्राध्यापक, अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन केंद्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

लेख इतिहास :प्राप्त :05 अप्रैल 2024, स्वीकृत :30 अप्रैल 2024, ऑनलाइन प्रकाशित :15 मई 2024

जातीय संकल्पना एक खोखली सामाजिक संरचना है जो किसी भी समाज के उत्कर्ष में सबसे बडी बाधा के रूप में सामाने आती है । यह किसी भी प्रकार की प्रतिभा को पर्याप्त स्थान नहीं देती और समाज में रहने वाले लोगों में असमानता जनित वैमनस्यता फैलाती है। इसका आधार ही असमानता पर टिका हुआ है। आधुनिक जाति-व्यवस्था प्राचीन वर्णवाद का भ्रष्टतम परिवर्तित रूप है। उत्तर वैदिक काल में कुछ तथाकथित स्वार्थी लोलुप लोगों ने अपने आत्मीय जनों को अनुचित लाभ पहुँचाने के लिए भारतीय सार्वभौमिकता की अक्षुण्ण परम्परा को ताक पर रखकर भारतीय समाज की पूरी की पूरी दिशा ही बदल दी।

भारत का समाज जातियों का समाज है ऐसी ही कुछ युक्ति विदेशी चिंतकों और इंटेलेक्चुअल वर्ग द्वारा हम पर थोपी गई। इसी जाति को समझने का प्रयास इस शोध पत्र में किया गया है। मन में हम सबके प्रश्न तो आता ही है कि यह आख़िर यह जाति है क्या? इसका उद्भव कैसे हुआ ? इसके स्वरूप में परिवर्तन कैसे-कैसे होता गया। हमारा भारतीय समाज विविध जातियों व उपजातियों में बँटा हुआ है। इसमें ऊँच्च और निम्न का भाव इस पैमाने पर व्याप्त है कि किसी की परछाई पडने मात्र से कोई व्यक्ति अपवित्र हो जाता है। प्राचीन समाज में ब्राह्मण सबसे अधिक आदर प्राप्त वर्ण था। यह स्थिति आज भी जस की तस बनी हुई है। पहले यह व्यवस्था कर्म पर आधारित थी तो भी लोग सन्तुष्ट हो जाते थे। परन्तु आज जाति अर्थात् जन्म के आधार पर यह व्यवस्था दी जाती है जो किसी भी रूप में स्वीकार्य नहीं है। एक ही कार्य को यदि ब्राह्मण करता है तो वह पूजनीय है और उसी कार्य को यदि कोई गैर ब्राह्मण करता है तो निन्दनीय है। यह व्यवस्था सुदृढ समाज के लिए घातक है। समस्या का मूल कारण किसी का पूजनीय होना नहीं है अपितु अकारण ही किसी का अस्पृश्य होना है,जो सामाजिक समस्या का मूल कारण है। आज मानव समाज में ऐसी अनेकों जातियाँ हैं जो अस्पृश्यता और सामाजिक बहिष्कार के शिकार हैं। उत्तर वैदिक काल में कुछ तथाकथित स्वार्थी लोलुप लोगों ने अपने आत्मीय जनों को अनुचित लाभ पहुँचाने के लिए भारतीय सार्वभौमिकता की अक्षुण्ण परम्परा को ताक पर रखकर भारतीय समाज की पूरी की पूरी दिशा ही बदल दी। प्राचीन समाज में जितनी समानता और पारस्परिक सौहार्द्र की बात कही गयी है आज उसका एकदम विपरीत स्वरूप देखने को मिलता है। वेद और भारतीय परम्परा के सम्पोषक भी जाति और वर्ण की असमानता का पोषण करते नजर आते हैं। एक समय में जिसको आदर्श की पराकाष्ठा के रूप में देखा जाता था आज उसी विषय पर बात करना अनावश्यक-सा प्रतीत होता है।

सम्पूर्ण भारतीय दर्शन में कर्म के सिद्धान्त को सर्वोपरि माना गया है। यहाँ तक यह भी कह दिया गया है कि कर्म में प्रवृत्त कराना ही वेदों की सार्थकता है। जब से कर्मवाद की भावना ने जाति का रूप धारण कर लिया तभी से भारतीय समाज का स्वरूप और अधिक नीचे गिरता चला गया। समाज में व्याप्त जातियों के मकडजाल और उच्च नीच के भाव ने समाज को कभी एकता के सूत्र में कभी बँधने ही नहीं दिया। प्राचीन वर्णव्यवस्था के कर्म आधारित होने के बावजूद समाज के कुछ स्वार्थी पाखण्डी लोगों ने इसे जन्म पर आधारित बता इतना प्रचार प्रसार किया कि यही सत्य माना जाने लगा। परन्तु भारतीय दर्शन में सत्य का महत्त्व अधिकाधिक रहा है।

अमृत काल
अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ समीक्षित एवं स्वीकृत शोध पत्रिका
ISSN: 3048-5118, खंड 2, अंक 2, अप्रैल - जून 2024

सत्यमेव जयते के विचार की सदैव जीत हुई है। आज समाज में परिवर्त्तन आया है। जिस तरह समाज में विखण्डनकारी शक्तियों का उद्भव भारतीय समाज में हुआ उसी प्रकार से इसी समाज में कबीर रविदास जैसे सन्त परम्परा के अनेकों सन्तों का जन्म हुआ और फुले, साहू, रानाडे, डॉ. अम्बेडकर डॉ. हेडगेवार जैसे मनीषियों का भी जन्म हुआ जिन्होंने इस कुत्सित और भ्रष्ट व्यवस्था का प्रतिकार किया और भारतीय संस्कृति को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। भारत सरकार के विविध उपक्रमों एवं अम्बेडकर, लोहिया, दयानन्द विभिन्न समाजसुधारकों के अथक प्रयासों से यद्यपि आज बहुत कुछ सुधार हुआ है परन्तु इतना मात्र सन्तोषप्रद नहीं है। आज भी समाज का ब्राह्मणवर्ग अपनी इच्छानुसार कोई भी कार्य चुन सकता है परन्तु निम्नवर्ग के ब्राह्मण का कार्य चुनने का अधिकार नहीं है। यदि कोई व्यक्ति पूजा-पाठ की प्रक्रिया को चुनने का प्रयास भी करता है तो समाज द्वारा दुदकार दिया जाता है। यद्यपि आर्यसमाज ने यह कार्य करने का प्रयास किया परन्तु पूर्ण सफलता नहीं मिली। आर्यसमाजों में भी अधिकतर पौरोहित्यकर्म ब्राह्मण वर्ग ही करता है। दूसरी जातियाँ भी इसको अपना तो सकती हैं परन्तु समाज इसको स्वीकार नहीं करता। यदि किसी को पता लग जाए कि अमुक व्यक्ति जाति का पण्डित नहीं है तो लोग उससे संस्कार करवाना बन्द कर देते हैं। आज भी संकीर्ण परम्परावादी विचारधारा के पोषक कई सारे गुरुकुलों में गैरब्राह्मण का प्रवेश निषिद्ध है। अभी हाल ही में केरला देवस्थ नाम बोर्ड के द्वारा गैर ब्राह्मण को मन्दिरों में पूजा और पोरोहित का काम देना बडा प्रगतिशील कदम हो पर वो वास्तविकता में जितना सफल हो पाया होगा उसकी विवेचना होनी चाहिए।

जब हम प्राचीन शिक्षाव्यवस्था पर विचार करते हैं तो सहसा ही मन में यह प्रश्न आता है कि क्या ये शिक्षा शूद्रो को मिलती थी उत्तर मिलता हैं की वैदिक काल में तो सभी वर्णो के साथ शूद्रो को भी शिक्षा का समान अधिकार था, क्योंकि वहाँ वर्ण के आधार पर किसी को शिक्षा से वंचित नहीं किया गया है। परन्तु बाद के समय में ये शिक्षा और आश्रम गुरुओ क बिभाजन हो गया । राज परिवार और आम जन फिर आमजनों और शूद्र और अन्य वर्णो में ये बट गया डॉ अम्बेडकर ने कहा की " छंदोगयोउपनिषद (6-1-2) की एक कथा है शूद्र रेकव ने वेदध्यान कराया इससे भी बढ़ कर यह बात हैं की " कवश एलशू " ऋषि शूद्र थे ।

उपरोकत और ऋग्वेद के दसवे मण्डल के तमाम श्लोको के रचियाता खुद एलेशू ही हैं। ऋषि परम्परा के श्रेष्ठ ऋषि मतंग शूद्र ही थे। परन्तु वेदिक कल के बाद शिक्षा का अधिकार शूद्रो से छीन लिया गया। इसी ब्रह्मचर्य आश्रम का संबंध कई संस्कारो से था जिस में से " जानेऊ संस्कार " प्रमुख थे और समाज में जातिवाद का बीज बोने वाले प्रमुख तत्व में वे प्रमुख थे। इसी सबको देख वीर विनायक सावरकर ने अच्छूत वर्ग को भी यज्ञोंउपनिदो (जनेऊ संस्कार) संस्कार कराया। पूर्वास्पृश्य परिषद, मालवा द्वारा यज्ञोपवीत वितरण एवं वेदपाठ अधिकार दान का आयोजन, 1929 में किया गया। वे कहते है कि वैदिक समाज चार वर्णों क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित था। यह वर्ण- व्यवस्था पूर्णतः गुण, कर्म और स्वभाव पर आधारित थी। जीवन-यापन के लिए किसी भी व्यक्ति को अपनी इच्छा के अनुरूप किसी भी कार्य का चुनाव कर सकता था। एक ही परिवार के सभी लोग भिन्न-भिन्न वर्ण के भी होते थे। कार्य के आधार पर किसी भी वर्ण को ऊँच अथवा नीच नहीं समझा जाता था। वेदों में विभिन्न वर्णों में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं माना गया है। स्वयं सावरकर वर्ण व्यवस्था का विश्लेषण करते है वे वर्ण व्यवस्था के बारे में विस्तार से कहते है। वैदिक समाज चार वर्णों क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित था। यह वर्ण- व्यवस्था पूर्णतः गुण, कर्म और स्वभाव पर आधारित थी। जीवन-यापन के लिए किसी भी व्यक्ति को अपनी इच्छा के अनुरूप किसी भी कार्य का चुनाव कर सकता था। एक ही परिवार के सभी लोग भिन्न-भिन्न वर्ण के भी होते थे। कार्य के आधार पर किसी भी वर्ण को ऊँच अथवा नीच नहीं समझा जाता था। वेदों में प्रत्येक वर्ण के कुछ सुनिश्चित कार्य गिनाए गए हैं जिनके आधार पर किसी भी व्यक्ति का वर्ण निर्धारित होता था का प्रत्येक व्यक्ति चार वर्णों में विभाजित होता था। प्रत्येक वर्ण के प्रभावी अंगों का व्याख्यान करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि

अमृत काल
अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ समीक्षित एवं स्वीकृत शोध पत्रिका
ISSN: 3048-5118, खंड 2, अंक 2, अप्रैल - जून 2024

ब्राह्मण समाजरूपी पुरुष का मुखभाग है, क्षत्रिय भुजाएँ हैं, वैश्य शरीर का उदर, कटि, जघन आदि मध्यभाग है तथा शूद्र पैर है।वेदों में विभिन्न वर्णों में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं माना गया है। अथर्ववेद में वर्ण शब्द चुनने अथवा स्वीकार करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ब्राह्मण : ब्राह्मण को समाजरूपी पुरुष का मुख माना गया है। "मुखस्य भावः मुख्यम्" इसी व्युप्तत्ति के आधार पर ब्राह्मण को समाज में सबसे अधिक आदर प्राप्त था। चूँकि पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मुख भाग पर ही सुस्थित होती हैं और इन्हीं ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से ही विभिन्न प्रकार का ज्ञान-विज्ञान का कार्य सम्भव हो पाता है। ज्ञान-विज्ञान का सम्पूर्ण कार्य ब्राह्मण करता है, इसलिए उसको समाज का मुख कहा गया है। ब्राह्मण समाज का वह वर्ग होता है, जो शैक्षणिक गतिविधियों में रुचि रखकर तदनुरूप जीवन-यापन करता है, वह ब्राह्मण की संज्ञा से अभीहित किया जाता है। ब्राह्मण को परिभाषित करते हुए शास्त्रकार लिखते हैं कि

"एतस्मिन् आर्यनिवासे ये ब्राह्मणाः कुम्भीधान्याः अलोलुपाः अगृह्यमाणकारणाः

किम् चित् अन्तरेण कस्याः चित् विद्यायाः पारगाः तत्रभवन्तः शिष्टाः ।"

अर्थात् जो अपरिग्रही अर्थात् धन का संग्रह न करता हो, किसी प्रकार का लालच न करता हो, बिना किसी कारण के अनावश्यक धनादि का ग्रहण न करता हो, किसी न किसी विद्या में पाराङ्गत हो वही व्यक्ति ब्राह्मण कहा जा सकता है।

इस प्रकार ब्रह्मज्ञान में सन्नद्ध, सत्य के प्रति निष्ठावान्, श्री अर्थात् मेंधा सम्पन्न, यशस्वी, श्रद्धावान्, दीक्षा तथा यज्ञ के प्रति निष्ठावान् व्यक्ति ब्राह्मण कहलाता है, जो समाज में सबसे अधिक पूजनीय है।

क्षत्रिय : क्षत्रिय अपनी भुजाओं से सबकी रक्षा करता है, इसलिए उसको समाज की भुजा कहा गया है। युद्धकला की प्रवीणता किसी भी व्यक्ति के भुजाओं पर भी निर्भर करती है। योद्धा जब युद्ध के मैदान में अपने युद्धकौशल का प्रदर्शन करता है तो उसकी भुजाएँ ही उसका प्रथम हथियार होती हैं। इसलिए उसको समाज की भुजाओं के रूप में रूपायित किया गया। क्षत्रिय के विषय में अथर्ववेद कहता है कि समाज का वह वर्ग जो रक्षा, शस्त्र, युद्धादि रक्षण गतिविधियों में रुचि रखकर समाज और राष्ट्र की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझे, क्षत्रिय कहलाता है ।

इस प्रकार जो व्यक्ति राष्ट्र की श्री वृद्धि चाहते हुए राज्य सम्बन्धी सभी विवादों को शान्त करने में प्रयत्नशील रहता है तथा यज्ञ में रुचि रखने वाला होता है, वही क्षत्रिय होता है।

वैश्य : वैश्य का कार्य भी अत्यन्त श्रमसाध्य है। यह कटि, जघन आदि प्रदेश से सम्भव हो पाता है। मुख, भुजा और पैर के अतिरिक्त शरीर के अन्य सभी भाग कटिप्रदेश में परिगणित होते हैं। कृषि अथवा व्यापार में आवागमन के साथ-साथ हल, कुदाल आदि चलाने के लिए जङ्घाओं और कटिप्रदेश का मजबूत होना अधिक आवश्यक है। वैश्य विभिन्न प्रकार का श्रम करके राजकीय कोष की श्रीवृद्धि करता है अतः उसको समाज का कटिभाग माना गया है।

सम्पूर्ण शरीर को यथोचित पोषण प्रदान करना उदर का कार्य है। वह अन्न जल आदि को ग्रहण करता है था उसको विविध प्रकार के ऊर्जाओं में परिवर्तित करके सम्पूर्ण शरीर को भेजता है। इस प्रकार पूरे शरीर के भरण-पोषण का पेट के द्वारा ही सम्पादित किया जाता है।

अमृत काल
अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ समीक्षित एवं स्वीकृत शोध पत्रिका
ISSN: 3048-5118, खंड 2, अंक 2, अप्रैल - जून 2024

इसी प्रकार वैश्य वर्ण भी समाज के अन्य सभी वर्णों के लिए अन्न, जल आदि को उगाकर उनका पालन-पोषण करता है इसलिए उसको उदर की संज्ञा दी गयी। वैश्य के विषय में अथर्ववेद में कहा गया है कि समाज का वह वर्ग जो वाणिज्य, व्यापार आदि में रुचि लेता है वैश्य कहलाता है।

शूद्र : उपर्युक्त तीन वर्णों द्वारा किए जाने वाले कार्य के अतिरिक्त शेष सभी कार्य शूद्रवर्ण के द्वारा सम्पादित किया जाता था। अन्य सभी वर्णों का कार्य सीमित था उनको प्रायः एक-एक ही कार्य सौंपा गया था परन्तु शूद्र का कार्य असीमित था। प्राणिमात्र की सेवा करना इसका प्रधान दायित्व था। यह वर्ण अत्यन्त प्रकृतिप्रिय था। मानवता की सेवा के साथ-साथ प्रकृति के तमाम जीवों पशु, पक्षी, वन, लता आदि का देखरेख करना यह अपना कर्त्तव्य समझता था। यह वर्ण अत्यन्त परिश्रमी और उदार हृदय वाला था। स्वच्छता से लेकर कृषि, वाणिज्य, श्रमिक, अस्त्र-शस्त्र का निर्माण, भवन-निर्माण आदि सभी प्रकार के कार्यों में इनकी सकारात्मक भूमिका होती थी। समाज में जहाँ कहीं भी किसी को सहयोग की आवश्यकता होती थी वहाँ पर इस वर्ण का सहयोग लिया जाता था।

जिस प्रकार पैर सम्पूर्ण शरीर के भार का वहन करते हैं, उसी प्रकार शूद्र भी सम्पूर्ण समाज की सेवा करके अन्य वर्णों की सहायता करता है, इसलिए उसको समाज का पैर कहा गया है। शूद्र को स्पष्ट करते हुए यजुर्वेद कहता है कि-"तपसे शूद्रम्" [अर्थात्] समाज का वह वर्ग जो विविध श्रमसाध्य कार्यों में रुचि लेता था वह शूद्र कहलाता था। यह वर्ग आजीवका हेतु स्वरुचि से सेवा आदि किसी अन्य कार्य को अपनाता है वह शूद्र कहलाता है। विभिन्न प्रकार की असामाजिक गतिविधियों में संलग्न रहने वाले लोग भी शूद्र की कोटि में गिनाए गए हैं। इस प्रकार वेदों में समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया है। क्रमशः ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यह विभाजन सर्वथा कर्म पर अधारित था। समाज का एक वर्ग जो शैक्षणिक गतिविधियों में रुचि रखकर तदनुरूप कार्यरत रहता था, ब्रह्मण कहलाता था। समाज का एक वर्ग जो रक्षा,शस्त्र, युद्धादि रक्षण गतिविधियों में रुचि रखता था क्षत्रिय कहलाता था। समाज का एक वर्ग जो वाणिज्य, व्यापार आदि में रुचि लेता था वैश्य कहलाता था तथा समाज में एक और वर्ग था जो स्वरुचि से हर संभव सबकी सहायता करता था, शूद्र कहलाता था। जो किसी प्रकार का कार्य नहीं करता था उसको दस्यु कहा जाता था। उनका समाज के विकास में इनका कोई विशेष योगदान नहीं होता था अतः सामाजिक वर्गों में इनकी गणना नहीं की गयी। वेदों में कर्मादि के आधार पर समाज में ऊँच-नीच की बात नहीं की गयी है। यद्यपि पठन-पाठन का मुख्य कार्य ब्रह्मण करता था तथापि समाज के सभी वर्गों को वेदादि सत्य शास्त्रों को पढ़ने का समान अधिकार दिया गया है। यद्यपि समाज विभिन्न वर्गों में बँटा हुआ था तथापि समाज में साथ-साथ चलने, परस्पर प्रीति पूर्वक वार्त्तालाप आदि के उपस्थापन के स्पष्ट संकेत हैं। यद्यपि संहिताकालीन प्राचीन वर्ण-व्यवस्था में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं दिखाई पडता है तथापि इसका यह तात्पर्य नहीं कि तत्कालीन समाज में ऊँच-नीच की भावना का सर्वथा अभाव था। परन्तु आज के अपेक्षा न्यून था। चूँकि वेद एक विधिसंहिता के रूप में परिनिष्ठित है इसमें आदर्श नियम अनुशासन ही उपनिबद्ध हैं। ऋग्वेद में विभिन्न प्रकार के दासों के विषय में चर्चा की गई है। अथर्ववेद में भी कहा गया है कि कोई मुझे दास न बनाए और न ही मैं किसी को दास बनाउँ। इससे स्पष्ट है कि उस समय भी दास प्रथा थी। लोग युद्ध में हारे हुए सैनिकों को अथवा निर्धन वर्ग को अपना दास बनाते थे तथा उनसे मनमाने तरीके से कार्य करवाते थे। वेदों ने इस प्रकार के किसी भी क्रियाकलाप को अवैध माना है तथा राजा के माध्यम से दास बनाने वाले को दण्ड दिए जाने का विधान किया है। इस प्रकार सामाजिक समरसता के बाधक जितने भी व्यवहार हैं वेदों में प्रायः सबका निषेध किया गया है। यह वर्ण व्यवस्था संहिताकाल में इतनी अपत्तिजनक नहीं थी जितनी कि अब है। उस समय सामाजिक असमानता की भावना न्यून रूप में परिव्याप्त दिखाई पडती है परन्तु ब्राह्मण और स्मृतिकाल के आते-आते तक यह व्यवस्था पूर्णतः असमानतामूलक ही हो गयी थी। किसी भी व्यक्ति द्वारा किए गए दण्ड का निर्धारण उसके वर्ण अथवा जाति के आधार पर ही होता था।

अमृत काल
अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ समीक्षित एवं स्वीकृत शोध पत्रिका
ISSN: 3048-5118, खंड 2, अंक 2, अप्रैल - जून 2024

जातिव्यवस्था के दुष्परिणाम : जाति-व्यवस्था के दुष्परिणाम को दर्शाते करते हुए डॉ. लोहिया कहते हैं कि- "जाति-व्यवस्था ने हमारे समाज में ऐसी प्रवृत्तियाँ पैदा की हैं जिसने निम्न कौशल वाली जातियों को निर्जीव पिण्ड बना दिया और बेहतर कौशल ऊँची जातियों के पास सिमट गए। ये अल्पसंख्यक ऊँची जातियाँ अपने बेहतर कौशल के कारण समाज का नेतृत्व प्रदान करने वाली बन गयीं। अपने अप्राकृतिक वर्चस्व को बनाए रखने के लिए ये जातियाँ कपट का खौलता पिण्ड बन गयीं किन्तु बाहर से बहुत शान्त और सुसंस्कृत दिखने लगीं। बहुसंख्यक जनता निर्जीव बन गयी और इलीट तबके प्रबन्धक बन गए। यह सब जाति व्यवस्था का कारनामा है।" भारतीय जाति-व्यवस्था का दुष्परिणाम इतना भयानक हुआ कि सम्पूर्ण समाज विखण्डित हो गया। डॉ. अम्बेडकर लिखते हैं कि-" जाति भावनाओं से आर्थिक विकास रुकता है। इससे वे स्थितियाँ पैदा होती हैं जो कृषि तथा अन्य क्षेत्रों में सामूहिक प्रयत्नों के विरुद्ध हैं। जात-पात के रहते ग्रामीण विकास समाजवादी सिद्धान्तों के विरुद्ध रहेगा।" जातीय असमानता एवं ऊँच-नीच की भावना ने सभी के मन में एक-दूसरे के प्रति आक्रोश भर दिया। जाति के आधार पर किसी को ऊँच अथवा किसी को नीच मानना सर्वथा अतार्किक प्रतीत हुआ इसलिए समाज का स्वाभिमानी व्यक्तियों ने इसका बहिष्कार शुरु कर दिया। परम्परागत रुढिवादिता इतनी व्यापक थी कि सम्मानप्राप्त वर्ग को अपने से निम्न जातियों के व्यक्तियों को सम्मान देना दुस्सह प्रतीत हुआ। इस प्रकार भारतीय समाज जातीय आधार पर मूलतः दो वर्गों उच्च और नीच विभक्त हो गया। जिन वर्गों में जितनी अधिक असमानता थी उनमें उतना ही अधिका विद्वेष व्याप्त था। जगह- जगह पर जातीय हिंसा होने लगी और भारतीय समाज तीव्रगति से विखण्डित होने लगा। काफी लम्बे समय तक निम्नवर्ग की जातियाँ अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को ईश्वरीय आदेश या फिर अपना भाग्य मानकर सहती रहीं।

समाज का प्रभूत्व वर्ग मनमाने तरीके से उनसे काम करवाता था तथा विविध परिस्थितियों में उनसे अमानवीयता का व्यवहार करता था। जब अमानवीय व्यवहार असह्य हो गया तो समाज के सर्वहारा वर्ग ने प्रतिरोध करना प्रारम्भ कर दिया और समाज का विखण्डन प्रारम्भ हुआ। तब तक सब ठीक चल रहा था जब तक शोषित जनता अपनी प्रतिक्रिया नहीं देती थी। जैसे ही उसने प्रतिकार करना शुरु किया तैसे ही अन्य शक्तियाँ भी उठ खडी हुयीं। लोगों समस्या के जडों की तलाश शुरु कर दी।

विचार करते- करते वे वेदों तक पहुँच गए। वेद और धर्म के नाम पर लोगों को काफी बहकाया गया। अतः समाज का कुछ वर्ग वेद और धर्म को नकारने लगा। सरकार के विविध प्रयासों एवं अम्बेडकर, पेरियार, लोहिया जैसे समाजसुधारकों ने सुधार हेतु अनेकानेक प्रयास किए जिसके परिणामस्वरूप आज काफी कुछ सुधार हुआ है परन्तु वो काफी नहीं है। इस जातिव्यवस्था ने भारतीय समाज का जितना नुकसान किया है उतना किसी और ने नहीं। आज वैश्विक धरातल पर यदि हमें किसी कारण शर्मिन्दा होना पड़ता है तो वह हमारी जातीय असमानता ही है। इसने भारतीय सामाजिक जीवन का स्वरूप ही विकृत कर दिया। लोहिया कहते हैं कि- "जाति-प्रणाली परिवर्तन के खिलाफ स्थिरता की जबरदस्त शक्ति है। यह शक्ति वर्तमान क्षुद्रता और झूठ को स्थिरता प्रदान करती है। एक गन्दा भय बना रहता है कि अगर यह क्षुद्रता और झूठ बेनकाब हुआ तो सारा ढाँचा गिर जाएगा।" इस प्रकार सामाजिक उत्कर्ष में जातिव्यवस्था सबसे बडी बाधा है। वैमनस्यता किसी भी समाज का सबसे बडा शत्रु होता है, जिस भी समाज में इसकी जडें जितनी व्यापकता से फैली रहेंगी वह समाज उतना ही अधिक असंगठित और अशान्त रहेगा। इस जातीय असमानता ने भारतीय समाज में वैमनस्यता को फैलाने का काम किया है। यह वैमनस्यता जब तक भारतीय समाज का हिस्सा रहेगा तब तक हमारी चुनौतियाँ कम नहीं होंगी। भारतवर्ष की समुन्नति में जितनी भी बाधाएँ सामने आयी हैं उनमें जातीय असमानता एक प्रमुख कारण है। जातिव्यवस्था ने विविध प्रतिभाओं का हनन किया है। वे प्रतिभाएँ जो सदियों से दबी पडी हुई हैं उनको स्वस्थ सामाजिक वातावरण देकर निखारने की जरूरत है। सामाजिक विद्वेष को समाप्त करने का एकमात्र उपाय सामाजिक समरसता है।

अमृत काल
अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ समीक्षित एवं स्वीकृत शोध पत्रिका
ISSN: 3048-5118, खंड 2, अंक 2, अप्रैल - जून 2024

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अम्बेडकर , बी . आर (2002): शूद्र कौन थे , मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी , मध्यप्रदेश, भारत।
2. अम्बेडकर , बी. आर (2010): जाती प्रथा का उच्छेद, गौतम बुक्स, दिल्ली, भारत।
3. कपूर, मस्तराम(2003) राममनोहर लोहिया : संघर्ष और चिन्तन, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मन्त्रालय।
4. कुमार प्रवेश (2011): दलित अस्मिता की राजनीति, मानक पब्लिकेशन दिल्ली भारत।
5. कुमार , प्रवेश (2012): दलित अस्मिता के प्रतीक , देशना प्रकशन , दिल्ली, भारत।
6. कुमार, शशिप्रभा,(2005): वैदिक संस्कृति के विविध आयाम. विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, भारत।
7. कुमार, प्रवेश (2014 अक्टूबर-दिसंबर): हिन्दू जाति का सच, शोधपर्व वाल्यूम-1 भारत।
8. कोसंबी, दामोदर धर्मानन्द(2007): प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, (अनु.) गुणाकर मूले. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, भारत।
9. टुलधरिया, बद्रीसाह (सवत् 2059): दैशिक शास्त्र, दीनदयाल उपाध्याय प्रकाशन, लखनऊ, भारत।
10. सहाय , गंगा (2006): ऋग्वेद , संस्कृत साहित्य प्रकशन , नई दिल्ली
11. सहाय, शिव स्वरूप (2014): प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास (हिन्दू सामाजिक संस्थाओ सहित), मोतीलाल प्रकशन, दिल्ली
12. B.R. Ambedkar volume : 6,19,13 , Publication Ministry of Social justice , Govt. of India
13. Ghuriya , G.S.(1974) : Caste and race in india , popular prakshan , Mumbai
14. Kumar,(Dr) Vivek (2002) : Dalit Leaders in india , Kalpaz prakshan house , Delhi